

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 2: राजा आग्नीध्र की कथा

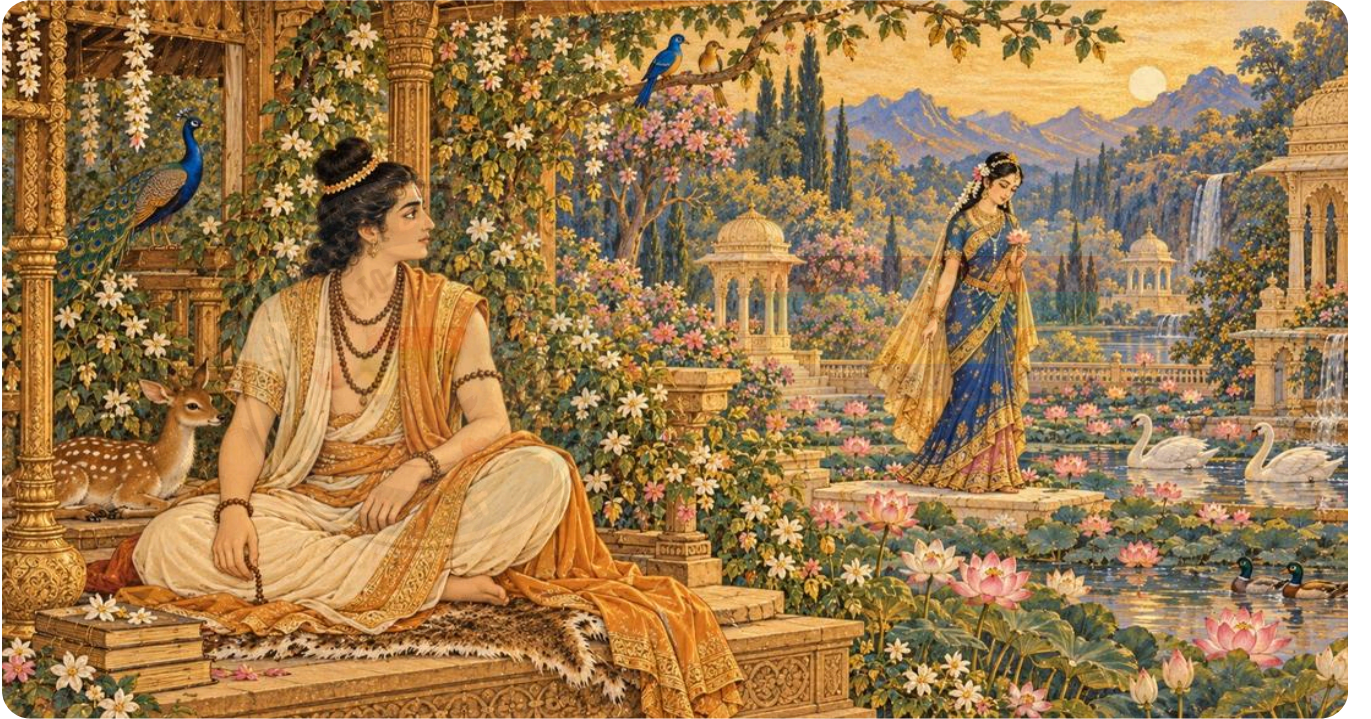
14 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



अपने आश्रम के पुष्पित उद्यान में ध्यानमग्न राजकुमार आग्नीध्र नूपुरों की झंकार सुनकर नेत्र खोलते हैं — और ब्रह्मा द्वारा भेजी गई अप्सरा पूर्वचित्ति को कमल-सरोवरों के बीच विचरण करते हुए देखते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पंचम स्कन्ध के प्रथम अध्याय में हमने देखा कि किस प्रकार महान् भक्त-राजा प्रियव्रत ने अनासक्त भाव से पृथ्वी पर शासन किया और फिर उसे त्यागकर वैराग्य के मार्ग पर लौट गए। यह द्वितीय अध्याय उनकी वंश-परम्परा के सूत्र को उनके ज्येष्ठ पुत्र आग्नीध्र तक ले जाता है — जो

जम्बूद्वीप के, भूमण्डल के केन्द्रीय द्वीप के, शासक थे। यहाँ शास्त्र एक अत्यन्त भिन्न और अत्यन्त मानवीय विषय की ओर मुड़ता है: किस प्रकार एक भला और कर्तव्यनिष्ठ राजा भी, तपस्या में लीन और योग्य पुत्र की कामना करता हुआ, तब बह जाता है जब मन इन्द्रियों के द्वारा कामना के लिए अपना द्वार खोल देता है। यह अध्याय एक साथ कोमल भी है और चेतावनी देने वाला भी — मोह का एक निष्कपट चित्र, बिना किसी निन्दा के कहा गया, और उस हृदय की मौन कीमत का, जो कभी पूर्णतया तृप्त नहीं होता।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 2 (द्वितीय अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: राजा आग्नीध्र की कथा
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह समस्त संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित शौनक आदि ऋषियों की सभा को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: जम्बूद्वीप का राज्य; मन्दराचल की एक घाटी, जहाँ आग्नीध्र तपस्या करते हैं; और उनके आश्रम का पुष्पित उद्यान
- केन्द्रीय विषय: किस प्रकार राजा आग्नीध्र ने योग्य पुत्र के लिए ब्रह्मा की आराधना की और उन्हें अप्सरा पूर्ववर्ति प्राप्त हुई; किस प्रकार वे कामना से अभिभूत होकर उससे संयुक्त हुए; और किस प्रकार उसके गर्भ से उन्होंने उन नौ पुत्रों को जन्म दिया जो जम्बूद्वीप के विभागों के शासक बने
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 2, श्लोक 1-23
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय से

पंचम स्कन्ध के प्रथम अध्याय में आत्मलीन राजकुमार प्रियव्रत ने ब्रह्मा की आज्ञा से पृथ्वी पर शासन का भार स्वीकार किया, अपने तेजोमय रथ से तब तक पृथ्वी की परिक्रमा की जब तक उसके पहियों की लीकें सात सागर न बन गईं, संसार को सात द्वीपों में विभाजित किया, और अपने सात पुत्रों को उनका शासक नियुक्त किया। ज्येष्ठ पुत्र आग्नीध्र को जम्बूद्वीप, सबसे भीतरी द्वीप, मिला। अपनी शक्ति के शिखर पर प्रियव्रत ने सब कुछ त्यागकर स्वयं को भक्ति में लीन कर लिया। यह द्वितीय अध्याय कथा को वहीं से उठाता है, जहाँ अब उनका पुत्र उस भूमि पर शासन करता है जिसे उसके पिता ने गढ़ा था।

अपने पिता के पदचिह्नों पर एक कर्तव्यनिष्ठ राजा

प्रियव्रत के भक्ति-साधना में लीन हो जाने पर शासन का उत्तरदायित्व उनके पुत्र पर आ गया। आग्नीध्र ने, अपने पिता की आज्ञा के प्रति निष्ठावान् रहते हुए, जम्बूद्वीप की प्रजा की ऐसी रक्षा की मानो वे उसके अपने पुत्र हों, और धर्म — सन्मार्ग — से कभी दृष्टि न हटाई। शास्त्र उसके पतन की कथा कहने से पहले सावधानीपूर्वक उसकी सज्जनता स्थापित करता है: वह न तो अत्याचारी था और न मूर्ख, अपितु एक

विवेकी राजा जो अपनी प्रजा का पिता के समान पालन करता था।

श्रीशुक उवाच

एवं पितरि सम्प्रवृत्ते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जम्बूद्वीपौकसः प्रजा औरसवद्धमविक्षमाणः पर्यगोपायत् ॥ १ ॥

*śrī-śuka uvāca evaṁ pitari sampravṛtte tad-anuśāsane vartamāna āgnīdhro jambūdvīpaukasah
prajā aurasavad dharmāvekṣamāṇaḥ paryagopāyat*

अर्थ: श्रीशुक ने कहा: जब उनके पिता इस प्रकार भक्ति-साधना में संलग्न हो गए, तब आग्नीध्र ने उनकी आज्ञा का पालन करते हुए धर्म के मार्ग पर दृष्टि रखी और जम्बूद्वीप के निवासियों की ऐसी रक्षा की मानो वे उनके अपने पुत्र हों। (स्कन्ध 5, अध्याय 2, श्लोक 1)

एक योग्य पुत्र की कामना से — जो उनकी वंश-परम्परा को आगे बढ़ाए — और पितरों के लोक में सम्मानित स्थान के आशीर्वाद की कामना से, आग्नीध्र ने पूजा की सामग्री एकत्र की और गहन एकाग्रता तथा कठोर तप के साथ समस्त प्राणियों के अधीश्वर, तेजस्वी ब्रह्मा की आराधना की। उन्होंने अपनी तपस्या के लिए मन्दराचल की एक एकान्त घाटी को चुना — वह पर्वत जो देव-कन्याओं के विहार-स्थल के रूप में प्रसिद्ध था।

स च कदाचित्पितृलोककामः सुरवरवनिताक्रीडाचलद्रोण्यां भगवन्तं विश्वसृजां पतिमाभृतपरिचर्योपकरण आत्मैकाग्र्येण तपस्याराधयां
बभूव ॥ २ ॥

*sa ca kadācit pitṛloka-kāmaḥ sura-vara-vanitākṛīḍācala-droṇyāṁ bhagavantaṁ viśva-sṛjāṁ
patim ābhṛta-paricaryopakaraṇa ātmaikāgryeṇa tapasvy ārādhayāṁ babhūva*

अर्थ: पुत्र-प्राप्ति की तथा उसके द्वारा पितरों के लोक में स्थान पाने की कामना से, आग्नीध्र ने पूजा की समस्त सामग्री एकत्र की और एकाग्रचित्त होकर कठोर तप के साथ ब्रह्मा — समस्त सृष्ट प्राणियों के अधीश्वर — की आराधना की, मन्दराचल की उसी घाटी में जहाँ देवताओं की परम सुन्दर कन्याएँ विहार करती हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 2, श्लोक 2)

यहाँ यह विचार करने योग्य है कि आग्नीध्र ने वस्तुतः क्या माँगा। वे प्रियव्रत के पुत्र थे — इस शास्त्र के महान् भक्त-राजाओं में से एक — फिर भी उनकी यह प्रार्थना स्वयं भगवान् के चरणों की शरण की ओर नहीं, अपितु एक योग्य पुत्र और पितृलोक में स्थान की ओर उन्मुख है — पितृलोक, जो कर्मकाण्डीय यज्ञों से प्राप्त होने वाला एक सीमित स्वर्ग है, न कि वह शाश्वत वैकुण्ठ जो केवल भक्ति के लिए ही खुलता है (श्लोक 2)। परम्परा के टीकाकार इसका एक कारण बताते हैं: कहा जाता है कि सन्तान की भीतरी प्रवृत्ति प्रायः उसी मनोदशा को प्रतिबिम्बित करती है जिसमें उसका गर्भाधान हुआ हो, और आग्नीध्र, वे कहते हैं, उस क्षण में गर्भ में आए जब स्वयं सज्जन प्रियव्रत का मन भी कामना से पूर्णतः मुक्त नहीं हुआ था। इसमें न तो पिता को दोष दिया गया है, न पुत्र को; यह केवल पहले से ही, कोमलता से, यह स्पष्ट करता है कि इतना अनुशासित राजकुमार भी क्यों एक लघुतर लक्ष्य के लिए प्रार्थना कर सकता था — और क्यों उसका यही तप, कुछ श्लोकों बाद, उसे बचाने में समर्थ नहीं होगा।



योग्य पुत्र की कामना से राजा आग्नीध्र मन्दराचल की एक घाटी में जाकर गहन एकाग्रता और तप से सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की आराधना करते हैं (श्लोक 1-2)।

स्वर्ग से भेजी गई अप्सरा

ब्रह्मा ने राजा की प्रार्थना जानकर उसका उत्तर एक अप्रत्याशित रीति से दिया। किसी वरदान को सीधे प्रदान करने के स्थान पर उन्होंने अपने ही दरबार से एक दिव्य गायिका — अप्सरा पूर्वचित्ति — को उसी क्षेत्र में उतार दिया, जहाँ आग्नीध्र ध्यान में बैठे थे। राजा के आश्रम से लगा हुआ एक अनुपम सौन्दर्य का उद्यान था: कमल-वनों से सुशोभित सरोवर और झीलें, हंसों, कारण्डव बत्तखों और अन्य जल-पक्षियों की ध्वनियों से गूँजती हुई, जो सघन वृक्षों के बीच स्वर्णिम लताओं पर बैठे पक्षियों के गीतों का उत्तर देती थीं। इसी उद्यान में वह दिव्य सुन्दरी विचरण करती हुई आई।

अपने प्रत्येक मनोहर पग पर उसके चरणों के आभूषण एक कोमल झंकार करते थे। उसे सुनकर राजकुमार — जिनके नेत्र, कमल-कलियों के समान, अब तक गहन ध्यान में मुँदे थे — उन्हें थोड़ा-सा खोलकर उसे देखा। उस एक दृष्टि में उनकी तपस्या का दीर्घ अनुशासन अपनी कठोरतम परीक्षा से मिला।



अपने स्वर्गीय दरबार से सृष्टिकर्ता ब्रह्मा अपनी सभा की गायिका, अप्सरा पूर्वचित्ति को, उस उद्यान में भेजते हैं जहाँ आग्नीध्र तप में बैठे हैं (श्लोक 3-5)।

पुष्पों की सुगन्ध का रसास्वादन करती हुई मधुमक्खी के समान उसके निकट आती हुई, वह दिव्य सुन्दरी — अपनी चाल, अपनी क्रीड़ा, अपने लज्जायुक्त कटाक्षों, अपने मधुर स्वर और अपने सुडौल रूप से — मनुष्य के हृदय में सीधे कामदेव के लिए एक मार्ग खोल गई। मकरध्वज कामदेव, राजकुमार के मन का द्वार उसे देखते ही खुला पाकर, उन पर पूर्णतया अधिकार कर बैठा, और अपना धैर्य खोकर आग्नीध्र किसी मोहित मूढ़ के समान उससे बातें करने लगे।

तामेवाविदूरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रन्ती ... भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति होवाच ॥ ६ ॥

tām evāvidūre madhukarīm iva sumanasa upajighrantīm ... bhagavato makara-dhvajasya vaśam upanīto jaḍavad iti hovāca

अर्थ: जब वह दिव्य सुन्दरी, मधुमक्खी के समान, उनसे कुछ ही दूरी पर पुष्पों की सुगन्ध का रसास्वादन कर रही थी — अपनी मनोहर गति, क्रीड़ा, लज्जालु कटाक्षों, मधुर वाणी और सुन्दर रूप से देवों और मनुष्यों के मन और नेत्रों को समान रूप से मोहती हुई — तब उसने मनुष्यों के हृदयों में कामदेव के लिए एक मार्ग खोल दिया। इस प्रकार अवसर पाकर मकरध्वज कामदेव के वश में आकर राजकुमार ने उससे किसी विवेकहीन के समान बात की। (स्कन्ध 5, अध्याय 2, श्लोक 6)

एक मोहित हृदय के वचन

आगे जो आता है वह पंचम स्कन्ध के सर्वाधिक सजीव प्रसंगों में से एक है। आग्नीध्र इतने अभिभूत थे कि एक स्वर्गीय अप्सरा को एक पवित्र तपस्विनी से भी न पहचान सके, और उन्होंने पूर्वचित्ति को वन में तप करती हुई कोई महान् मुनि मान लिया — तथा उसके शरीर के प्रत्येक अंग को एक संन्यासी के पवित्र चिह्न के रूप में पढ़ा। उसकी धनुषाकार भौंहों को उन्होंने बिना डोरी के दो धनुष कल्पित किया; उसके कटाक्षों को कमल-पंखुड़ियों से युक्त बाण, कोमल फिर भी बेधने वाले। उसके चारों ओर गुंजार करती मधुमक्खियों को उन्होंने भगवान् की स्तुति में सामवेद और उपनिषदों के मन्त्र गाते हुए शिष्य मान लिया। उसके नूपुरों की झंकार उनके कानों में उसके चरणों के पिंजरों में छिपे तीतरों के स्वर बन गई।

उनका भ्रम खुले विस्मय में बढ़ता जाता है, जब वे उसके मुख की प्रशंसा करते हैं, उसके आभूषणों और अंगों को स्वयं दिव्यता के चिह्न मानकर।

का वाऽऽत्मवृत्तिरदनाद्धविरङ्ग वाति

विष्णोः कलास्यनिमिषोन्मकरौ च कर्णौ ।

उद्विग्नमीनयुगलं द्विजपङ्क्तिशोचि-

रासन्नभृङ्गनिकरं सर इन्मुखं ते ॥ १३ ॥

kā vātma-vṛttir adanād dhavir aṅga vāti viṣṇoḥ kalāsy animiṣonmakarau ca karṇau udvigna-mīna-yugalaṁ dvija-paṅkti-śocir āsanna-bhṛṅga-nikaraṁ sara in mukhaṁ te

अर्थ: हे प्रिय! आप किस अन्न पर जीवित हैं, जिससे आपके मुख से हवन में अर्पित आहुति के समान सुगन्ध निकलती है? निश्चय ही आप भगवान् विष्णु की एक कला हैं, क्योंकि आपके कान दो अपलक मगरों के समान देदीप्यमान कुण्डलों से सुशोभित हैं; और आपका मुख एक सरोवर के समान है — उसके चंचल नेत्र दो उछलती मछलियाँ, उसके दाँतों की पंक्तियाँ हंसों के समान श्वेत, और उसके घुँघराले केश मँडराती मधुमक्खियों का समूह। (स्कन्ध 5, अध्याय 2, श्लोक 13)

वे आगे उस पर लगे “लाल, सुगन्धित लेप” पर, उस गेंद पर जिसे वह अपने कमल-सदृश हाथ से ताड़ती है और जो उनके नेत्रों तथा मन को घुमा देती है, और उसके वस्त्र को हिलाती हुई क्रीड़ामयी पवन पर विस्मित होते हैं। वे कहते हैं कि जिस तप ने उसे ऐसा रूप दिलाया, उसने दूसरों के तप को नष्ट कर दिया होगा — और वे विस्मय से पूछते हैं कि कहीं स्वयं ब्रह्मा ने ही तो उसे उनकी पत्नी बनने को नहीं भेजा। अन्त में वे प्रतिज्ञा करते हैं कि वे उसे कभी न छोड़ेंगे: उनका मन और उनके नेत्र उस पर स्थिर हैं, और वे उस “सुन्दर वक्षवाली मुनि” से प्रार्थना करते हैं कि वह अपने इस सेवक को, अपने साथियों सहित, जहाँ चाहे ले चले। यह समस्त भाषण एक साथ हास्यपूर्ण भी है और मार्मिक भी — एक विवेकी पुरुष की बुद्धि पूर्णतया कामना की सेवा में लगी हुई।



कामना से अभिभूत होकर आग्नीध्र उस दिव्य सुन्दरी को ऐसे सम्बोधित करते हैं मानो वह कोई पवित्र तपस्विनी हो, उसके प्रत्येक अंग को एक पवित्र चिह्न के रूप में पढ़ते हुए

(श्लोक 6-16)।

संयोग, और नौ पुत्र

इस चतुर, कामुक भाषण से — क्योंकि आग्नीध्र देवों की-सी बुद्धि रखते थे और स्त्री का मन जीतने की कला में निपुण थे — उन्होंने उस दिव्य सुन्दरी को, उसका अत्यधिक सम्मान करते हुए, अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। वह भी उनकी बुद्धि, उनकी कोमलता, उनके सौन्दर्य, उनके यौवन, उनके तेज और उनकी कुलीनता पर मोहित हो गई; और वह उस जम्बूद्वीप के अधिपति के साथ, दस करोड़ वर्षों तक सांसारिक तथा स्वर्गीय दोनों प्रकार के भोगों को भोगती हुई रही। उसके गर्भ से राजा आग्नीध्र ने नौ पुत्रों को जन्म दिया।

तस्यामु ह वा आत्मजान् स राजवर आग्नीध्रो नाभिकिम्पुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसंज्ञान्नव पुत्रानजनयत् ॥ १९ ॥

tasyām u ha vā ātmajān sa rāja-vara āgnīdhro nābhi-kimpuruṣa-harivarṣelāvṛta-ramyaka-hiraṇmaya-kuru-bhadrāśva-ketumāla-sañjñān nava putrān ajanayat

अर्थ: उसके गर्भ से उस श्रेष्ठ राजा आग्नीध्र ने नौ पुत्रों को जन्म दिया, जिनके नाम थे — नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल। (स्कन्ध 5, अध्याय 2, श्लोक 19)

इन नौ पुत्रों को — नौ वर्षों में एक-एक — जन्म देकर, और उन सबको आग्नीध्र के घर में छोड़कर, पूर्वचित्ति पुनः उसी ब्रह्मा की सेवा में लौट गई जहाँ से वह आई थी। ये पुत्र, अपनी दिव्य माता की कृपा से बलवान् और सुगठित, अपने पिता द्वारा राज्य के अपने-अपने उचित भाग पाकर, जम्बूद्वीप के नौ विभागों पर शासन करने लगे, जो उन्हीं के नामों से प्रसिद्ध हुए।



आग्नीध्र के नौ पुत्र, अपनी दिव्य माता की कृपा से बलवान्, अपने-अपने भाग पाकर जम्बूद्वीप के नौ विभागों पर शासन करते हैं, प्रत्येक क्षेत्र अपने राजकुमार के नाम से जाना गया (श्लोक 19-21)।

वह राजा जो कभी तृप्त न हुआ

अध्याय एक शान्त, गम्भीर स्वर पर समाप्त होता है। इतने वर्षों और इतने भोगों के पश्चात् भी राजा आग्नीध्र इन्द्रिय-सुखों से तृप्त न हुए। वे उस दिव्य अप्सरा को ही सर्वोच्च सुख मानते रहे; और वेदों में विहित यज्ञों तथा कर्मों के पुण्य से उन्होंने मृत्यु के पश्चात् उसी पितृलोक में स्थान प्राप्त किया, जहाँ वह आनन्द में निवास करती थी। उनकी लालसा ने उनके परलोक को भी आकार दिया — एक कोमल चेतावनी कि कामना, चाहे कितनी भी परिष्कृत हो, केवल स्वयं को नवीनीकृत करती रहती है। जब उनके पिता का देहान्त हो गया, तब उनके नौ पुत्रों ने मेरु — महापर्वत के देवता — की नौ कन्याओं से विवाह किया।

सम्परेते पितरि नव भ्रातरो मेरुदुहितृर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीतिमितिसंज्ञा नवोदवहन् ॥ २३ ॥

samparete pitari nava bhrātaro meru-duhitṛ merudevīm pratirūpām ugradaṁṣṭrīm latām ramyām śyāmām nārīm bhadraṁ devavītim iti saṁjñā navodavahan

अर्थ: जब उनके पिता का देहान्त हो गया, तब नौ भाइयों ने मेरु की नौ कन्याओं से विवाह किया — मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति। (स्कन्ध 5, अध्याय 2, श्लोक 23)

इन विवाहों में एक विवाह आगे आने वाले अध्यायों के लिए विशेष महत्त्व रखता है: ज्येष्ठ पुत्र नाभि ने मेरुदेवी से विवाह किया — और उन्हीं की वंश-परम्परा पंचम स्कन्ध की कथा को आगे भगवान् ऋषभ के अवतरण तक ले जाएगी।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

इन्द्रियाँ मन का खुला द्वार हैं। आग्नीध्र का पतन दुष्टता से आरम्भ नहीं होता; वह एक ही दृष्टि से आरम्भ होता है, जो उस समय पड़ी जब उनके नेत्रों को ध्यान में मूँदा रहना चाहिए था। शास्त्र दिखाता है कि किस प्रकार एक मन, एक भी इन्द्रिय-द्वार पर असावधान रहने पर, कितनी शीघ्रता से कामना द्वारा प्रवेश करके बन्दी बना लिया जा सकता है। इन्द्रियों पर सतर्कता कोई गौण अनुशासन नहीं, अपितु आध्यात्मिक जीवन की वास्तविक सीमा-रेखा है।

आत्मसंयम बिना बुद्धि कामना की दासी बन जाती है। आग्नीध्र “देवों की-सी बुद्धि” रखते थे, फिर भी वह समस्त प्रतिभा अप्सरा को जीतने में ही व्यय हो जाती है। अध्याय मौन रूप से यह सिखाता है कि प्रतिभा, चतुराई और यहाँ तक कि महान् पुण्य भी स्वतन्त्रता के समान नहीं हैं; हृदय के संयम के बिना हमारे श्रेष्ठतम गुण भी तृष्णा की सेवा में भर्ती किए जा सकते हैं।

कामना, एक बार पोषित होने पर, कभी तृप्त नहीं होती। दस करोड़ वर्षों के भोग और नौ पुत्रों के पश्चात् भी आग्नीध्र “इन्द्रिय-सुखों से तृप्त न हुए।” यहाँ भागवत की वह बार-बार आने वाली अन्तर्दृष्टि एक ही जीवन में मूर्त है: भोग तृष्णा को समाप्त नहीं करता, अपितु उसे भड़काता है, और इन्द्रिय-विषयों पर टिका हृदय केवल अपनी ही भूख को बढ़ाता है।

हमारी लालसाएँ हमारे भाग्य को गढ़ती हैं। क्योंकि राजा का मन निरन्तर उस दिव्य अप्सरा में लगा रहा, इसलिए उनका परलोक भी उसी आसक्ति से निर्धारित हुआ — उन्होंने वही लोक प्राप्त किया जहाँ वह रहती थी। शास्त्र चेतावनी देता है कि जिसे हम भीतर संजोते हैं, वही मौन रूप से हमारी आगे की यात्रा की दिशा बन जाता है। इसीलिए भक्त को यह उपदेश दिया जाता है कि वह हृदय को इसके स्थान पर भगवान् पर स्थिर करे।

एक भला राजा भी कृपा की आवश्यकता रखता है। आग्नीध्र कर्तव्यनिष्ठ, भक्त और इतने आत्मसंयमी थे कि कठोर तप कर सके — फिर भी वे गिर पड़े। इस प्रकार यह अध्याय हमें उनके पिता प्रियव्रत के पूर्व-उदाहरण का और भी अधिक मूल्य समझने योग्य बनाता है, जिनकी स्वतन्त्रता उनके अपने बल से नहीं, अपितु भगवान् के चरणों की शरण से आई थी।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

जिस रीति से भागवत यह कथा कहता है, उसमें एक महान् कोमलता है। यह न तो आग्नीध्र का उपहास करता है, न उन्हें दोषमुक्त ठहराता है। यह बस हमें एक निष्कपट पुरुष को देखने देता है — एक भला राजा, एक भक्त पुत्र, आशीर्वाद का एक अभिलाषी — जो एक ऐसी लालसा से पराजित हो जाता है जिसे देख पाना उसने कभी नहीं सीखा। उसकी भूल वही है जिसे हम सब पहचानते हैं: यह कल्पना करना कि अगला भोग अन्ततः पर्याप्त होगा। और इस प्रकार यह अध्याय एक दर्पण बन जाता है। हम भी बाह्य अनुशासन में अपने नेत्र मूँदे रहते हैं जबकि कोई भीतरी द्वार चुपचाप खुला खड़ा रहता है। हम भी चतुर हैं, और अपनी चतुराई उसका पीछा करने में लगाते हैं जो तृप्त नहीं कर सकता। शास्त्र जो उपाय देता है वह संसार के सौन्दर्य के प्रति घृणा नहीं, अपितु एक गहन प्रेम है जो शेष सब को पुनर्व्यवस्थित कर देता है — भगवान् के चरण-कमलों का वह मधु, जिसकी बात पिछले अध्याय ने की थी, जो अकेला ही हृदय को वस्तुतः तृप्त छोड़ता है। आग्नीध्र की कथा पढ़ना यह कोमलता से पूछे जाने के समान है कि हमारी अपनी लालसा कहाँ टिकी है, और वह हमें स्वतन्त्रता की ओर ले जा रही है या केवल एक और जन्म की ओर।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज एक इन्द्रिय-द्वार चुनें — नेत्र, या कान — और उसे, एक ही घंटे के लिए, कोमलता से भगवान् की ओर मोड़े रखें: दृष्टि को उनके स्वरूप पर टिकाएँ, या कानों को उनके नाम और महिमा से भर दें। जब कोई अन्य आकर्षण उठे, तो उससे कठोरता से न लड़ें; बस उस खुले द्वार को देखें, और हृदय को पुनः उसी एक विषय की ओर मोड़ें जो तृप्त करता है, जैसा आग्नीध्र न कर सके। इस छोटे, बारम्बार किए गए कर्म में ही बन्धन और स्वतन्त्रता का समस्त अन्तर निहित है।

उपसंहार

पंचम स्कन्ध का द्वितीय अध्याय राजा आग्नीध्र की कथा है: जम्बूद्वीप के एक धर्मपरायण शासक, जिन्होंने योग्य उत्तराधिकारी के लिए प्रार्थना करते हुए ब्रह्मा से भेजी गई अप्सरा पूर्वचित्ति को पाया, और जो — एक ही दृष्टि से जिनका मन जीत लिया गया — कामना में बह गए, उससे संयुक्त हुए, और उन नौ पुत्रों को जन्म दिया जो जम्बूद्वीप के नौ विभागों के शासक बने। युगों के भोग के पश्चात् भी वे तृप्त न रहे, और उनकी आजीवन आसक्ति ने मृत्यु के परे भी उनके भाग्य को गढ़ा। बिना किसी कठोरता के कहा गया, उनका जीवन एक उज्ज्वल चेतावनी के रूप में खड़ा है: कि इन्द्रियाँ मन का खुला द्वार हैं, कि असंयमित बुद्धि कामना की दासी बन जाती है, और कि हृदय भोग के अनन्त पीछे भागने में नहीं, अपितु भगवान् की शरण में विश्राम पाता है। अब जबकि कथा उनके भक्त पुत्र नाभि और रानी मेरुदेवी की ओर बढ़ती है, हम उस पवित्र अवतरण की ओर खिंचे चले जाते हैं जिसे पंचम स्कन्ध प्रकट करने की तैयारी कर रहा है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य ज्ञान-ज्योति हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), पंचम स्कन्ध, द्वितीय अध्याय, “An account of Agnidhra,” पृष्ठ 445–448।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ॰ श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं संस्तुति के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी और लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के साथ किसी सम्बद्धता या उसके समर्थन का दावा नहीं किया जाता।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-2-the-story-of-king-agnidhra-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट